भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

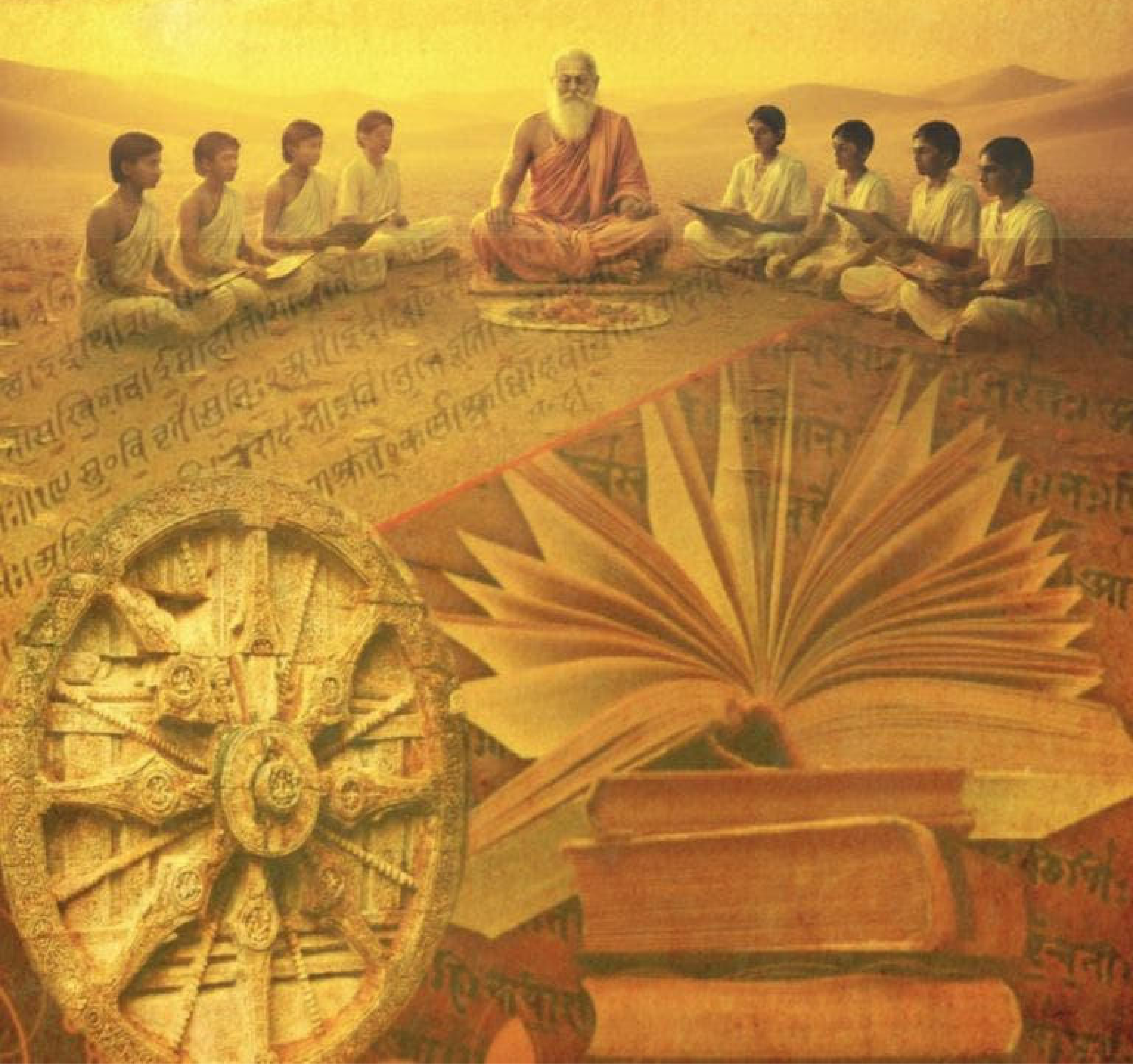

भारतीय ज्ञान प्रणाली
उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

पुष्पा शर्मा

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

मो. 9660111549

संस्करण

प्रथम 2026

ISBN : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक

श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

24

भारतीय ज्ञान परम्परा के संदर्भ में बुद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था

भावना जैन
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

बुद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था को समझने के लिए हमें ऋग्वैदिक काल से लेकर बुद्ध के आविर्भाव तक के दीर्घ ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखना आवश्यक है। इस कालखंड में ज्ञान के विविध अंगों का अत्यधिक विस्तार हुआ था। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा अन्य शास्त्रीय साहित्य के निर्माण से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में शिक्षा केवल सीमित वर्ग तक ही नहीं, बल्कि व्यापक रूप से विकसित हो चुकी थी। ब्राह्मण वर्ण के निर्माण का मूल उद्देश्य समस्त आर्य समाज को ज्ञानार्जन का अवसर प्रदान करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षण संस्थाओं के रूप में गुरुकुलों की स्थापना हुई, जिन्होंने समाज में शिक्षा के प्रसार और बौद्धिक उन्नति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बौद्ध साहित्य, विशेषतः पालि-पिटकों में, ब्राह्मण आचार्यों के गुरुकुलों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि बुद्धकाल में भी ब्राह्मण परम्परा की शिक्षण संस्थाएँ सक्रिय थीं और उनका सामाजिक प्रभाव बना हुआ था। उस समय जो ब्राह्मण आचार्य विशेष ख्याति प्राप्त कर लेते थे, उन्हें 'दिशाप्रमुख आचार्य' कहा जाता था। इन आचार्यों की समाज में अत्यन्त प्रतिष्ठा थी और सैकड़ों शिष्य उनकी पादसेवा करते हुए उनसे विद्या ग्रहण करते थे। उदाहरण के रूप में चम्पा नगर में एक दिशाप्रमुख आचार्य का उल्लेख मिलता है, जो अपने आश्रम में लगभग पाँच सौ छात्रों को शिक्षा प्रदान करते थे। इसी प्रकार कौशल राज्य के सुनेत्त और सेल नामक आचार्य भी अपने ज्ञान और शिक्षण परम्परा के लिए प्रसिद्ध थे।

मिथिला में निवास करने वाले ब्रह्मायु नामक विद्वान ब्राह्मण का वर्णन मिलता है, जो समस्त शास्त्रों के पंडित थे। उनके शिष्य भी अपने गुरु के समान विद्वान माने जाते थे, जिससे गुरु-शिष्य परम्परा की सुदृढ़ता का पता चलता है। वाराणसी में भी

दिशाप्रमुख आचार्यों के आश्रमों में पाँच-पाँच सौ शिष्यों के समूह के उल्लेख प्राप्त होते हैं। तक्षशिला तो इस युग का सर्वाधिक प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र था, जिसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। वहाँ के दिशाप्रमुख आचार्य केवल स्थानीय ही नहीं, बल्कि दूरस्थ क्षेत्रों से आए विद्यार्थियों को भी शिक्षा प्रदान करते थे।

पालि-पिटकों में अनेक ब्राह्मण परिव्राजकों के नाम भी मिलते हैं। ये परिव्राजक वस्तुतः धर्माचार्य थे, जिनके साथ बड़े-बड़े शिष्य समुदाय जुड़े रहते थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये आचार्य अपने शिष्यों को केवल अध्यात्म और धर्म का ही नहीं, बल्कि अन्य विषयों का भी ज्ञान प्रदान करते थे। इन सभी उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि बुद्धकाल में देश के विभिन्न भागों में अनेक गुरुकुल विद्यमान थे, जहाँ जिज्ञासु विद्यार्थी ब्राह्मण आचार्यों के सान्निध्य में रहकर विद्या प्राप्त करते थे।

गुरुकुलों की स्थापना प्रायः तपोवनों या एकान्त स्थलों में की जाती थी। प्राचीन काल में वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व, गौतम, याज्ञवल्क्य जैसे महर्षियों के आश्रम शिक्षण के प्रमुख केन्द्र थे। यद्यपि सभी गुरुकुल घने वनों में ही स्थित हों, ऐसा आवश्यक नहीं था। अनेक गुरुकुल नगरों के सन्निकट भी स्थापित किए जाते थे। वाराणसी और तक्षशिला जैसे नगरों में जो गुरुकुल थे, वे प्रायः नगर से कुछ दूरी पर, उपवनों या शांत स्थानों में स्थित होते थे, जहाँ एकाग्रचित्त होकर अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध रहता था।

राजधानियों और व्यापारिक केन्द्रों में स्वाभाविक रूप से विद्वानों का निवास होता था। जहाँ विद्वान रहते, वहाँ शिष्य स्वयं ही पहुँच जाते थे। नगरों के कोलाहल और शोरगुल के कारण अध्ययन में बाधा पड़ती थी, इसलिए अनेक विद्वान जनसमूह से दूर, एकान्त स्थानों में निवास करने लगे। कालान्तर में उनके निवास-स्थल ही गुरुकुलों में परिवर्तित हो गए। इसी प्रकार वाराणसी और तक्षशिला जैसे नगरों में प्रसिद्ध शिक्षण केन्द्रों की स्थापना हुई। इन विद्या-केन्द्रों में दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे, जिससे शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ।

जातक कथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि इन प्रसिद्ध विद्या-केन्द्रों में विद्यार्थी सामान्यतः 14 से 16 वर्ष की आयु में आचार्य के पास अध्ययन के लिए जाते थे। वे गुरु के आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अध्ययन करते थे और ज्ञान के साथ-साथ नैतिकता, अनुशासन तथा सामाजिक कर्तव्यों की शिक्षा भी प्राप्त करते थे। इस प्रकार बुद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न होकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण की एक सशक्त और समन्वित प्रणाली थी।

बौद्ध भिक्षु संघ का संगठन मूलतः आश्रम व्यवस्था के आदर्शों पर किया गया

था। इसी कारण बौद्ध विहार केवल निवास-स्थल न रहकर शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गए। भिक्षु जीवन में ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन तीनों आश्रमों का समन्वय दिखाई देता है। ब्रह्मचर्य के आदर्श से अनुशासन, संयम और अध्ययन पर बल दिया गया, वानप्रस्थ के तत्व से आत्मचिन्तन और साधना को महत्त्व मिला तथा संन्यास के भाव से त्याग और वैराग्य को जीवन का आधार बनाया गया। इस समन्वित जीवन-दृष्टि के कारण विहारों में शिक्षण कार्य को विशेष महत्व प्राप्त हुआ और वे आध्यात्मिक एवं बौद्धिक साधना के केन्द्र बन गए।

ब्राह्मणों के गुरुकुलों के साथ-साथ जब बौद्ध विहारों में भी अध्ययन की सुविधाएँ उपलब्ध होने लगीं, तब शिक्षा का क्षेत्र और अधिक व्यापक हो गया। बौद्ध विहारों में रहने वाले छात्रों और भिक्षुओं के जीवन-आदर्श, गुरु-शिष्य सम्बन्ध तथा कठोर अनुशासन के नियम बौद्ध संघ की व्यवस्था से प्रत्यक्ष रूप में जुड़े हुए थे। गुरु और शिष्य के बीच केवल औपचारिक सम्बन्ध नहीं होता था, बल्कि यह सम्बन्ध आध्यात्मिक मार्गदर्शन और जीवन-निर्माण पर आधारित होता था। शिष्य अपने आचार्य के सान्निध्य में रहकर न केवल धर्म और दर्शन का अध्ययन करते थे, बल्कि आचार, व्यवहार और आत्मसंयम का भी अभ्यास करते थे।

बुद्धकाल में राजगृह, वैशाली, श्रावस्ती और कपिलवस्तु जैसे प्रमुख नगरों में अनेक प्रसिद्ध विहारों का निर्माण हुआ, जो बौद्ध शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गए। राजगृह में वेणुवन, यष्टिवन और सीतवन अत्यन्त प्रसिद्ध थे। वैशाली में कूटागारशाला और आम्रवन, कपिलवस्तु में निग्रोधाराम तथा श्रावस्ती में जेतवन और पूर्वाराम का विशेष महत्व था। इन विहारों के अतिरिक्त भी अनेक विहारों का निर्माण हुआ, जिन्हें 'संघाराम' कहा जाता था। संघारामों में मुख्यतः आध्यात्मिक चिन्तन और बौद्ध दर्शन पर विचार-विमर्श होता था। यहाँ के आचार्य अपने शिष्यों को अध्यात्म-ज्ञान के गहन सागर में प्रविष्ट कराते थे और उन्हें जीवन के परम उद्देश्य से परिचित कराते थे।

बुद्ध के समय के बौद्ध विहारों में रहने वाले भिक्षुओं को सारिपुत्त, महामोग्गलान, महाकच्चान, महाकोट्ठित, महाकप्पिन, महाचुन्द, अनुरुद्ध, रेवत, उपालि, आनन्द और राहुल जैसे प्रमुख थेरों के प्रवचनों को सुनने और उनसे प्रत्यक्ष संवाद करने का अवसर प्राप्त होता था। ये वरिष्ठ भिक्षु प्रायः भ्रमणशील रहते थे और जिस विहार में कुछ समय के लिए ठहरते, वहाँ के भिक्षुओं को जटिल दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों पर उनसे विचार-विमर्श करने तथा अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करने का सुअवसर सहज ही मिल जाता था। इस प्रकार विहार केवल स्थिर शिक्षण केन्द्र ही नहीं थे,

बल्कि चलायमान विद्या-परम्परा के केन्द्र भी थे।

बौद्ध विहारों में भिक्षुओं को आध्यात्मिक ज्ञान के साथ-साथ लौकिक विषयों और शिल्पों की शिक्षा देने की भी व्यवस्था थी। उदाहरण के रूप में, जब भिक्षुओं के निवास के लिए विहारों का निर्माण किया जाता था, तब उसकी देखरेख के लिए संघ द्वारा विधिवत् एक भिक्षु की नियुक्ति की जाती थी, जिसे 'नवकम्मिक' कहा जाता था। नवकम्मिक केवल नए भवनों के निर्माण का निरीक्षण ही नहीं करता था, बल्कि पुराने भवनों की मरम्मत और रख-रखाव की भी जिम्मेदारी निभाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध शिक्षा जीवनोपयोगी और व्यवहारिक थी।

ग्रंथों में भिक्षुओं द्वारा बुनाई का कार्य करने और अपने पहनने के लिए चीवरों की सिलाई करने के उल्लेख भी मिलते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि विहारों में श्रम, आत्मनिर्भरता और कौशल-विकास को भी शिक्षा का अंग माना गया था। कालान्तर में जब बौद्ध विहारों में उपासकों और गृहस्थों को भी शिक्षा दी जाने लगी, तब लौकिक विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना आवश्यक हो गया। यदि बौद्ध विहारों में सभी प्रकार के विषयों के अध्यापन की व्यवस्था न की गई होती, तो आगे चलकर नालन्दा, विक्रमशिला और वलभी जैसे महाविहारों को विश्वविख्यात विद्या-केन्द्रों के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो पाती।

विद्याकेन्द्र तक्षशिला :

सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक तक्षशिला शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के रूप में दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त कर चुका था। इसकी प्रसिद्धि में वहाँ के आचार्यों की बड़ी भूमिका थी। दिशाप्रमुख आचार्यों की प्रतिष्ठा इतनी व्यापक थी कि सहस्रों मील दूर के प्रदेशों से जिज्ञासु विद्यार्थी अपने प्राणों की परवाह न कर तक्षशिला पहुँचते थे। जातक कथाओं में उल्लेख मिलता है कि समग्र भारतवर्ष के ब्राह्मण और क्षत्रिय कुमार शिल्प और विद्या सीखने के लिए तक्षशिला आते थे। वाराणसी, राजगृह, मिथिला, उज्जयनी और कौशल राज्य के विद्यार्थी भी वहाँ अध्ययन करने जाते थे। कोशल-नरेश प्रसेनजित, मगध के वैद्य जीवक, वैयाकरण पाणिनि, आचार्य कौटिल्य तथा सम्राट् चन्द्रगुप्त तक्षशिला के प्रसिद्ध स्नातक रहे। बौद्ध-पिटकों में भी तक्षशिला का उल्लेख इसे अपने समय का सर्वाधिक ख्याति प्राप्त विद्या-केन्द्र बताता है।

तक्षशिला में आधुनिक विश्वविद्यालय जैसी कोई संरचना नहीं थी। वहाँ विद्वानों का आवास ही शिक्षण संस्थान था। आचार्य अपने वरिष्ठ शिष्यों के सहयोग से शिक्षण कार्य करते थे। शिष्यों की संख्या और अध्ययन की अवधि निश्चित नहीं थी; जितने विद्यार्थी आते, आचार्य उन्हें विद्यादान देते। जातकों में यह भी उल्लेख मिलता है कि

दिशाप्रमुख आचार्य पाँच-पाँच सौ विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे, परन्तु यह संख्या प्रतीकात्मक थी। वास्तविकता में एक आचार्य से लगभग एक-एक सौ विद्यार्थियों का अध्ययन होना सामान्य था। आचार्य शिक्षण में वरिष्ठ शिष्यों का सहयोग भी लेते थे।

तक्षशिला में अध्ययन करने के लिए आवश्यक नहीं था कि सभी विद्यार्थी गुरुकुल में निवास करें। राजकुमार स्वयं अपनी रहने की व्यवस्था कर सकते थे, परन्तु सामान्य विद्यार्थी गुरु के आवास में रहते, जहाँ उन्हें भोजन, निवास और अध्ययन की सुविधाएँ मिलती थीं। धनवान विद्यार्थी शुल्क के साथ-साथ आवास और भोजन का भुगतान करते थे, जबकि निर्धन विद्यार्थी दिन में गुरुकुल के कार्य करके और रात में अध्यापन प्राप्त करके शिक्षा ग्रहण करते थे।

तक्षशिला मुख्यतः उच्च शिक्षा का केन्द्र था। अध्ययन के लिए आने वाले विद्यार्थियों की आयु प्रायः 16 वर्ष होती थी। समाज के विभिन्न वर्गों और जातियों के विद्यार्थी यहाँ आते थे, परन्तु ब्राह्मण और क्षत्रियों की संख्या अधिक थी। जातकों में पाँच सौ ब्राह्मण छात्रों के लकड़ी जमा करने में लगे होने और 103 राजकुमारों का धनुर्वेद सीखने का उल्लेख मिलता है। आचार्य विद्यादान में उदार थे और उन्होंने राजकुमारों, ब्राह्मण कुमारों के साथ दर्जी और मछली मारने वालों को भी शिष्य बनाया। केवल चांडालों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध था।

तक्षशिला में अध्ययन महँगा था क्योंकि यह उच्च शिक्षा का केन्द्र था और विद्यार्थी किसी विशेष विषय में विशिष्टता प्राप्त करने के लिए ही यहाँ आते थे। दूरस्थ और जिज्ञासु छात्र के लिए शिक्षा महँगी पड़ती थी। धनवान छात्र आसानी से अध्ययन कर लेते, जबकि निर्धन छात्रों को श्रम या भिक्षा के माध्यम से गुरुदक्षिणा चुकानी पड़ती थी। मेधावी छात्रों को राजकीय प्रोत्साहन भी मिलता था। कई छात्रों को राज्य द्वारा उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए तक्षशिला भेजा गया।

शिक्षण अवधि :

बुद्धकाल में सामान्यतः 16-18 वर्ष की आयु में व्यक्ति अपना प्रारंभिक अध्ययन पूरा करके गृहस्थ हो जाता था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा रखने वाले विद्यार्थी किसी प्रमुख शिक्षण केन्द्र, जैसे तक्षशिला, में जाते थे। तक्षशिला उच्च शिक्षा का केन्द्र होने के कारण वहाँ अध्ययन के लिए छात्रों की आयु लगभग 16 वर्ष होती थी।

सूत्रों और स्मृति ग्रंथों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के उपनयन की न्यूनतम आयु क्रमशः 8, 11 और 12 वर्ष तथा अधिकतम आयु 16, 22 और 24 वर्ष

थी। जातकों में उल्लेख मिलता है कि सोलह वर्ष की उम्र तक राजकुमारों की अधिकांश विषयों की शिक्षा पूर्ण हो जाती थी, परंतु यह लौकिक कथन है और इसका अर्थ यह नहीं कि इस उम्र में व्यक्ति सम्पूर्ण शास्त्र का ज्ञाता बन जाता।

धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण का विद्यार्थी जीवन सात वर्ष की आयु में आरम्भ होता था और उपनयन 8–16 वर्ष के बीच किया जाता था। सामान्यतया लोग प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करके गृहस्थ बन जाते थे, जबकि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले 15–16 वर्ष की आयु में प्रमुख विद्या–केन्द्रों के लिए प्रस्थान करते थे।

जातकों में गृहस्थ छात्रों के भी उदाहरण मिलते हैं। वाराणसी में एक ब्राह्मण विद्यार्थी ने पढ़ाई जारी रखते हुए स्थानीय युवती से विवाह किया, परन्तु उसकी पत्नी की दुष्टता उसके अध्ययन में बाधक थी। कुछ छात्रों का विवाह गुरु–पुत्री से भी होता था। इस प्रकार अध्ययन में गुरु के निकट होने के लिए सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियाँ कभी–कभी चुनौतीपूर्ण होती थीं।

बुद्धकालीन शिक्षा के विषय :

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार बुद्धकाल में छह प्रमुख विषयों की शिक्षा दी जाती थी। ये थे: वेद; वैदिक साहित्य जैसे शाखा, छंद, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष; ब्राह्मण, संहिता और उपनिषद्; गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र; यज्ञ–संबंधी साहित्य, जैसे पद्यकारिका और वैदिक अनुक्रमणी; तथा लौकिक साहित्य—अर्थशास्त्र, शिल्प और वार्ता। पाणिनि ने धार्मिक और लौकिक विषयों का समृद्ध साहित्य–भंडार बताया है।

बौद्ध विहारों में बौद्ध दर्शन और पालि भाषा पर विशेष बल दिया जाता था। यहाँ के छात्रों को विरोधियों के मत जानना आवश्यक था, इसलिए ब्राह्मण और बौद्ध दोनों एक–दूसरे के साहित्य से परिचित रहते थे। इसी प्रकार गुरुकुलों में बौद्ध दर्शन का ज्ञान कराया जाता था।

साहित्य और दर्शन के साथ–साथ शिल्प शिक्षा भी इस युग में महत्वपूर्ण थी। विनय–पिटक और चुल्लवग्ग में लेख, गणना, मुद्राशास्त्र और कपड़े बुनने जैसी तकनीकों का उल्लेख मिलता है। पालि ग्रंथों में अष्टादश शिल्पों, मिलिन्दपञ्हों में उन्नीस शिल्पों का उल्लेख है। तक्षशिला में धनुर्वेद, रणविद्या, वैद्यक, मंत्रविद्या, सर्प–वशीकरण और गुप्तधन खोजने की विद्या की शिक्षा दी जाती थी।

पालि–निकायों में विधि, गणित, कृषि, पशुपालन, वाणिज्य और शिल्प जैसे व्यवसायिक शिक्षण का भी उल्लेख है। मौर्यकाल में उद्योग, शिल्प और कला की सुव्यवस्था के लिए अध्यक्ष नियुक्त किए गए। तकनीकी शिक्षा पहले से ही प्रमुख

केन्द्रों में उपलब्ध थी, जैसे कि जीवक को आयुर्वेद और चन्द्रगुप्त को रणविद्या सीखने तक्षशिला भेजा गया। शिल्प शिक्षा में अभ्यास को विशेष महत्व दिया गया और व्यापारिक संघों का इसमें सहयोग था।

निष्कर्षत: बुद्धकाल में शिक्षा गुरुकुल और बौद्ध विहारों में दी जाती थी। गुरुकुलों में ब्राह्मण आचार्य वेद, वैदिक साहित्य, धर्मसूत्र, शिल्प और लौकिक ज्ञान सिखाते थे। बौद्ध विहारों में दर्शन, पालि भाषा, शिल्प और व्यावहारिक कौशल पर बल दिया जाता था। तक्षशिला जैसे प्रमुख केन्द्र उच्च शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थे, जहाँ विद्यार्थी 16 वर्ष की आयु में अध्ययन के लिए आते थे। शिक्षा गुरु-शिष्य परम्परा पर आधारित थी; धनवान विद्यार्थी शुल्क देते और निर्धन विद्यार्थी श्रम या भिक्षा द्वारा पढ़ाई करते थे।

सामाजिक वर्ग के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण कर लोग गृहस्थ बन जाते थे, जबकि उच्च शिक्षा चाहने वाले प्रमुख केन्द्रों में जाते थे। तकनीकी और शिल्प शिक्षा अभ्यास और संघों के सहयोग से दी जाती थी।

☆☆☆